- अध्याय पंचम -

' मराठी के झोपडपट्टी जनजीवन पर आधारित उपन्यास - एक अवलोकन '

साठोत्तरी कालखण्ड में हिन्दी और मराठी का उपन्यास साहित्य मानवी जीवन की अनदेखी, अस्पर्शित और दुर्लक्षित जमीन को कुरेदने का प्रयत्न करने में सक्षम रहा। एक विशिष्ट अंचल को चुनकर वहाँ की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक रूढी-प्रथाओं पर गहराई से चिन्तन किया जाने लगा। सामाजिक परिवेश से प्रभावित या स्पंदित लोकजीवन की प्रस्तुती आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से होने लगी। समस्त अंचल को नायक के रूप में मूर्त किया जाने लगा। स्थानीय बोली या भाषा के माध्यम से नवीन औपन्यासिक शिल्प की निर्मिती होने लगी।

किसी स्थान विशेष से संबंधित मानवीय जीवन की संवेदनाओं, मूल्यों, समस्याओं, संबंधों, परम्पराओं, सामूहीक दलों, राजनीतिक और सामाजिक आयामों, सांस्कृतिक पहलुओं, उनके उत्सवों, पर्वों, अन्धविश्वासों, लोकगीतों, पुराने एवं नये मूल्यों आदि से ओत-प्रोत जनजीवन की अभिव्यक्ति होती रही। इस स्थिति में महानगरों से सटकर किसी गटार-गंगा के किनारे या रेल-पटरी के ढलान पर झुग्गी-झोपडियों का सृजन होने लगा। महानगरीय उपेक्षित अंचल, महानगरों की नरकपुरी के रूप में इन उपेक्षित क्षेत्र को देखा जाने लगा। साठोत्तरी मराठी के उपन्यासकारों ने महानगरी की इस उपेक्षित झुग्गी-बस्तियों को अपने उपन्यास का केन्द्र मानकर वहाँ के जनजीवन का गहराई से चिन्तन शुरू किया। इस दिशा में पहला कदम जयवंत दलवी ने 'चक्र' नामक उपन्यास के माध्यम से उठाया। 'चक्र' उपन्यास के बाद 'वासुनाका', 'माहिमची खाडी', 'तो आणि त्याचा मुलगा', 'वावर', 'झोपडपट्टी', 'हातम्ट्टी', 'वस्ती वाढते आहे' और 'दिवसाच्या अंधारात' आदि कई झोपडपट्टी जनजीवन पर प्रकाश डालनेवाले उपन्यासों का सृजन हुआ। मराठी उपन्यासों में इस औपन्यासिक धारा ने बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया और महानगरों के उच्छिष्ट पर पलनेवाले झोपडपट्टी की स्थिति और गति को पाठकों के सामने ला कर समर्थता के साथ प्रस्तुत किया।

'मराठी के झोपडपट्टी जनजीवन पर आधारित उपन्यास भी प्रादेशिक उपन्यासों के अंतर्गत ही आते हैं। फिर भी प्रादेशिक उपन्यास और झुग्गी-झोपडी पर आधारित उपन्यास में यह अंतर है कि झोपडपट्टी उपन्यासों में निसर्गरम्य वातावरण का अभाव रहता है और झोपडपट्टी उपन्यासों में उच्शृंखल लैंगिक सम्बन्धों के चित्रण मिलते हैं।'[1]

महानगरीय जीवन की सबसे बडी बिमारी झोपडपट्टी मानी जाती है। 'भारत में 19 वीं सदी के अंत में औद्योगिकरण का आरंभ हुआ। महानगरों में कलकारखाने खोले गये। इन कारखानों में काम करके उपजीविका करने हेतु ग्रामीण लोग शहरों की तरफ दौड पडे। महानगरों में बाहय लोगों की भीड बढने लगी। मिलनेवाली खाली जगह पर बिना परवाना टाट को बिछाकर झोपडपट्टी का जन्म हुआ। गंदी नालियों के किनारे और जहाँ भी खाली जगह मिले वहाँ पर झुग्गियाँ बनने लगी। अत्यंतिक दारिद्रय और खुली हवा के कमी के कारण झोपडियाँ रोगों के अड्डें बनी। जगह के तंगी के कारण नर-नारी के शरीर-संबंध बच्चों के आँखों से नही बचे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि बच्चों का व्यक्तित्व-विकास कुंठित हुआ। बुरे व्यवसायों के अड्डें झुग्गियाँ बनी। तस्करी, हातभट्टी, चोरबजारी, गुनहगारी, पाकिटमारी, वेश्या-व्यवसाय, अनैतिक संबंध, अवैध मातृत्व, अवैध सन्तान आदि कई कलंकित प्रवृत्तियाँ इस माहौल में पनपने लगी। कानून तोडना, रिश्वतें देना, गुण्डई करना आदि दुष्प्रवृत्तियाँ प्रबल होने लगी। झोपडपट्टियों के गुण्डों को अपने हाथ में लेकर नेता लोग और अमीर लोग अपना उल्लू सीधा करने लगे।'[2]

महाराष्ट्र के बम्बई में स्थित धारावी की झोपडपट्टी एशिया खण्ड में सबसे बडी झोपडपट्टी मानी जाती है। आज बेंगलोर, मद्रास, कलकत्ता, जमशेदपुर, लखनौ और कानपुर आदि महानगरों में पनपनेवाली झोपडपट्टी की समस्याएँ वहाँ के नागरिक जीवन को संत्रस्त कर रही हैं। झोपडपट्टी जनजीवन के इन प्रवृत्तियों के आधार पर मराठी के झोपडपट्टी जनजीवन पर प्रस्तुत कई महत्वपूर्ण उपन्यासों का इस लघु-शोध-प्रबंध में जिक्र करना अनिवार्य लगता है, कारण मराठी के झोपडपट्टी जनजीवन के आधार पर लिखे गये उपन्यासों के अनुकरण पर ही हिन्दी में कई झोपडपट्टी पर आधारित उपन्यास लिखे गये हैं।

जयवंत दळवी के 'चक्र' 1963 में बम्बई में स्थित एक खलीज के परिवेश की एक झोपडपट्टी का चित्रण किया गया है। इस झुग्गी-झोपडी का परिवेश गंदा है। गंदी नालियों के किनारे बसी इस झोपडपट्टी से गंदा पानी संथ गति से आगे बढ रहा है। इस बस्ती में स्थित झोपडियों की स्थिति अत्यंतिक दयनीय हैं। कमरभर ऊँचाई रखनेवाली ये झोपडियाँ छोटी-छोटी लकडियों के सहारे खडी हैं। सुराख पडे टीन उसपर बिछायें हैं। कई झोपडियाँ घास-फूस की बनी हैं। बेंत के टट्टे, सिमेंट की पुरानी बोरियाँ, विज्ञापन के विविध पोस्टर आदि जो भी मिला उसे हर एक ने अपने - अपने झोपडपट्टियों पर बिछाया। 'दो झोपडियों के बीचवाले खुले भाग में कपडें के झूले झूल रहे थे। इस झुले में छोटे-छोटे शिशु सो रहे थें। गंदे बच्चें सुअर की भाँति संचार कर रहे थें।'[3]

दारिद्रय झुग्गी-झोपडियों का स्थायी भाव होता है। प्रस्तुत उपन्यास में बेन्वा, अम्मा, पुन्ना, आयशा, लूका के माध्यम से झोपडपट्टी जनजीवन के दारिद्रय पर प्रकाश डाला है। वहाँ की स्त्रियाँ फटे-पुराने कपडों में अर्धनग्न अवस्था में रहती हैं। झुग्गी-झोपडियों में दारिद्रय होकर भी इन्सानीयत नजर आती है। लूका का झोपडपट्टी की तरफ आना, झोपडपट्टी वासियों को आनंद होना, बेन्वा के घर लूका की अगवानी के लिए मुर्गी काटना, उसे शराब पिलाना आदि बातों से पता चलता है कि ये लोग दरिद्री अवस्था में भी अतिथियों का सत्कार करने के लिए अपनी इन्सानीयत से बाज आते हैं।

झोपडपट्टी निवासी अपने पेट की अग्नि बुझाने के लिए भले-बुरे सभी प्रकार के व्यवसाय करते हैं। भागी वेश्या को ग्राहक उपलब्ध करा देने का काम लूका कमिशन पर करता है। लूका हातभट्टी का भी व्यवसाय करता है, लूका की शराब को ग्राहकों तक पहुँचाने का काम कई लोग करते हैं। बेकार युवक बेन्वा है, वह हातभट्टी की शराब बेचता है। अम्मा रोज मजदूरी पर जाती है। वहाँ के कई युवक बुटपॉलिश करते हैं। यहाँ रहनेवाले लोग चोर-बजारी, तस्करी, पाकीटमारी, डकैती आदि अवैध धन्धें भी करते हैं।

महानगरीय झोपडपट्टियों में गुण्डई करनेवाले दादाओं का निवास रहता है। इन गुण्डों का आतंक पूरी झोपडपट्टी पर फैल जाता है। सभी लोग इनसे डरते हैं। लूका इस उपन्यास का ऐसा पात्र है, जिसे तडीपार किया हुआ है। बेन्वा के द्वारा लूका का नाम सुनते ही पानपट्टीवाला उसे मुफत में सिगरेट का पॅकिट देता है। बेन्वा की बखाई तनख्वाह देने को इन्कार करनेवाला काँच सामान का व्यापारी लूका को देखते ही बेन्वा की तनख्वाह अदा करता है। लूका नेहरू के आगमन पर मौजुद भीड में घुसकर पाकीटमारी करता है। बम्बई महानगरी में स्थित इन झोपडपट्टियों के गुण्डें चोरी करना, जेब काटना, लूटपाट करना, आतंक जमाना आदि कई काली करतुतें करते हैं।

इन लोगों में अनीति वेश्या-गमन की प्रवृत्ति और नशापान की वृत्ति अधिक देखने को मिलती है। एक होटल में जाकर लूका और बेन्वा का ऊँचा खाना खाना, भागी नामक वेश्या के यहाँ उनका जाना, लूका द्वारा भागी को भोगना, शराब प्राशन करके लूका द्वारा बेन्वा की माँ को उसके ही घर में भोगना आदि कई घटनाएँ इन लोगों की अनीति पर प्रकाश डालती हैं। दारिद्रय से ग्रस्त आयशा इस बस्ती में वेश्या-व्यवसाय करती है। ये सारे स्त्री-पुरूष मिलकर शराब-पान करते हैं। बेन्वा की माँ का कराड के एक कोकणस्थ ब्राहमण ड्रायव्हर से अनैतिक संबंध होना, इससे उसका गर्भवती बनना, अनीति से लूका का असाध्य रोगों का शिकार बनना आदि कई उदाहरण इन

लोगों के अवैध नीति पर प्रकाश डालते हैं।

इस बकाल बस्ती के युवकों में बेकारी अधिक मात्रा में फैली हुई होने के कारण ये लोग बुरे व्यवसाय करते हैं। बेन्वा का हातभट्टी पर काम करना, लूका का लूट-पाट करना इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है। ये लोग सुरक्षित जिंदगी के लिए उज्वल भविष्य के सपने देखते हैं। बेन्वा की माँ अपना छोटासा घर बसाकर सुरक्षित जिंदगी चाहती है। वह लूका द्वारा बेन्वा को सूचना देते हुए कहती है - "लूका, तू इसे बता दे - ये मारकाट और लफडेबाजी मँगता। जनमभर मैंने भोग भोगे। अब इसे इमानदारी से धन्दा करना चाहिए, पैसा कमाना चाहिए, कहीं पर किराए पर जमीन लेकर खुद की झोपडी खडी कर दी तो मैं मुक्त हो जाऊँगी।"[4] वह अपने बेटे के उज्वल भविष्य के प्रति भी चिन्ताक्रान्त नजर आती है। बेन्वा भी माँ की चाह को पूरी करने की चाह रखते हुए कहता है - "दो रूपये कमाऊँगा ------ चार रूपये कमाऊँगा ----- बचत करके जमीन किराए पर खरीदूँगा ----- शादी करूँगा ---- आदि सपने रंगाते-रंगाते वह उज्वल और सुरक्षित जीवन के बारे में सोचता है।"[5] झोपडपट्टी की बंदगी की सीमा को तोडकर वहाँ से बाहर निकलने का आशावाद इन लोगों में लक्षित होता है। अपने इस सपने को पूरा करने के लिए अम्माने ड्रायव्हर की सहायता से एक झोपडी भी बांध दी है।

ये लोग दुर्दैव के शिकार होते हैं। अम्माने झोपडी तो बांध ली, सपना साकार होने का समय आया परंतु दुर्दैवने लूका के रूप में उसका पिछा नहीं छोडा। बेन्वा और लूका को पुलिस के हवाले होना पडा। अम्मा का गर्भपात हुआ। पुलिसों ने झोपडी उखाड दी। इन लोगों की बदकिस्मती पर लेखक ने अनेक घटनाओं के माध्यम से सोचा है।

जयवंत दळवीने 'चक्र' में झोपडपट्टी जनजीवन को जिंदा बनाया है। म्युनिसिपालिटी का झाडूवाला सोन्या का अम्मा पर आसक्त होना, अम्मा के सौंदर्य को अपनी आँखों द्वारा पीते रहना, उसे हररोज गरम-गरम चाय पिलाना, अम्मा द्वारा लूका को शरीर भोग देना, ड्रायव्हर की रखैल बनना, फिर भी अम्मा द्वारा नैतिक जीवन की चाह रखना, अम्मा द्वारा बेन्वा को हातभट्टी व्यवसाय से दूर रखने की चाह प्रस्तुत करना, ईमानदारी से पैसा जुटाने का सन्देश देना, सुरक्षित जिंदगी की चाह रखना आदि घटनाओं से झोपडपट्टी जनजीवन के यथार्थ दर्शन होते हैं। मूल्यविहीन जीवनयापन करनेवाले ये लोग एक दूसरे से झगडते भी हैं और प्रेम भी करते हैं। यहाँ युवतियों का उच्छृंखल बर्ताव, बेकारी, अनीति, गुनहगारी, नशापान की प्रवृत्ति और भोग की वृत्ति आदि के भी यहाँ दर्शन होते हैं।

इस उपन्यास की भाषा मराठी से निर्मित भिन्न बोली है। इसमें गालियों का प्रयोग है। भाषा में अंचलिकता को बढावा मिलता है। इस उपन्यास में झोपडपट्टी की संस्कृति, विकृति, अनाचार, बिभत्सता, अनीति, मानवता, समूहजीवन, खान-पान, शराब-पान आदि के दर्शन होते है।

डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर के मतानुसार - 'बम्बई की झुग्गी-झोपडपट्टी में रहनेवाले दरिद्र वर्ग के नारकीय और पशूतुल्य जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाला यह एक अत्यंतिक यथार्थवादी उपन्यास है। 'चक्र' उपन्यास लेखक के प्रत्यक्ष अनुभव का साहित्यिक रूप है। 'चक्र' में अभिव्यक्त जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाला लेखक निःसंदेह साहसी और हाड़-मांस का कलाकार जान पडता है। मराठी लेखक प्रायः सभी प्रकार की वर्जनाओं से बाहर जाकर यथार्थता का सामना करने का प्रयत्न कर रहा है। 'चक्र' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।'[6]

तु.शं. कुलकर्णी के मतानुसार - ' 'चक्र' ने झोपडपट्टी संस्कृति से नैकटय प्राप्त करा देनेवाली मानवतावादी दृष्टि को जागृत किया है।'[7]

'वासूनाका' - भाऊ पाध्ये : 1965

भाऊ पाध्ये के 'वासूनाका' - 1965 में झोपडपट्टी जनजीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। इसमें लोफरों की दुनिया का घिनौना चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ सट्टेबाजी हैं, चोर हैं, हातभट्टियाँ हैं, लोफर स्त्रिया हैं, युवतियों की छेडछाड करनेवाले हिरो हैं। इस उपन्यास में पोक्या, डाफ्या, मोन्या, चम्पा, मामु, येप्पी, सुर्वेमामा, मानु, पैरी, टरेरा, फोमन्या, परसू आदि सारे पात्र अपने-अपने स्वभाव धर्म को लेकर उतर पडे हैं। बम्बई महानगर के वालपाखाडी जैसे एक उपेक्षित भाग में पली हुई विकृत संस्कृति का यहाँ हू-ब-हू चित्रण खींचा गया है। 'शहरों के किनारे निर्मित झोपडपट्टी, यंत्रयुगीन सामाजिक परिस्थिति की एक विकृति है, इसी विकृति का चित्रण भाऊ पाध्ये ने इस उपन्यास में किया है।'[8]

प्रस्तुत उपन्यास में झोपडपट्टी में स्थित बेकारों और लोफरों के युवा समूह जीवन पर प्रकाश डाला जाता है। इसमें युवकों की भोगासक्ती, भोगविकृति, प्रेमसंबंध, अनैतिक संबंध, युवतियों की उच्छृंखलता, गुण्डई आदि का चित्रण आया है। लेखक ने इस उपन्यास की कथावस्तु को कई खंडों में विभाजित करके उसके अलग-अलग नाम विभाजित किये हैं।

'वासूनाका' अनीति से लथपथ भरा हुआ है। यहाँ प्रेम संबंधों की भरमार भी है। मामु-भानु का प्रेम, मामु-टेरी परेरा का प्रेम, इस उपन्यास के 'इश्क' नामक भाग में चित्रित किया है। वास्तव में भानु-मामु की सगी मौसेरी बहन है परंतु प्रेम के आवेग में ये रिश्तें भुलकर प्रेम में संपृक्त हो गये है। ये दोनों एक-दूसरे से इतने आसक्त है कि एक के बिना दूसरा रह नही सकता। भानु कहती है - 'अब मौसेरे भाई-बहनों में विवाह होते हैं ---- मौसी का हमें चाहे

जितना विरोध हो तो भी हमारी शादी होगी। आबा और मौसी ने मेरी शादी यदि अन्य किसी से करा दी तो मैं खुदखुशी करूँगी।'[9] स्पष्ट है कि इस घटना से इन दोनों के बेहद प्यार का पता चलता है। मामु का टेरी परेरा से प्यार भानु को खलता है, वह क्रोधित बनकर तीन दिनों तक अन्न सत्याग्रह करती है, वह मामु से कहती है - 'इस प्रकार मेरा गला घोंटना था तो मुझसे प्रेम का स्वाँग क्यों रचता है।'[10] अंत में भानु की शादी किसी अन्य से करायी जाती है और मामु पागल बनता है।

'वासूनाका' में चित्रित यौन सम्बन्ध विकृत और देखने लायक हैं। इस उपन्यास के 'धमाल' नामक भाग में खोमन्या परसू और येप्पी के यौन-सम्बन्ध देखने लायक हैं। येप्पी एक लोफर और रण्डी नारी है जो खोमन्या परसू की अनुपस्थिति में डाफन्या, पोक्या तथा अन्य लोफरों से सम्बन्ध रखती है। इस उपन्यास के 'इशारा' भाग में पापा मिय्यों की चाल में रहनेवाली युवतियों की उच्छृंखलता सामने आती है। शादी-शुदा 'सू' पति के सान्निध्य में न रहकर वालपाखाडी के बशा से अनैतिक सम्बन्ध रखती है। वह हरी नोट की प्यासी है। निवेदक पोक्या की माँ उसके चारित्र्य पर प्रकाश डालते हुए कहती है - 'चली-चली, बेशरम कहीं की, उसे किसी की लज्जा नहीं। ---- पिता ने शादी करा दी थी ---- उसी पति को छोडकर लोफरों के साथ घुमती है----- रण्डी के समान।'[11]

इस चाल की युवतियों की भोगासक्ती पर प्रकाश डालते हुए पोक्या कहता है - 'पापामियों के चाल की सभी युवतियाँ रंडी हैं। अपनी भोगासक्ती को बुझाने के लिए उन्हें कोई भी चलता है। डाफन्या मामा जैसा बूढा और खरप्या जैसा मजदूर ---- कोई भी।'[12] कली पर बुढे डाफन्या मामा की दृष्टि केन्द्रित हुई है, वह पोक्या पर भी आसक्त है। यहाँ दाजी-बायजी के भी प्रेम-सम्बन्ध दिखाये हैं। इन प्रेम-सम्बन्धों से लगता है कि पूरे वालपाखाडी लफड़ेबाजी का अड्डा बन चुकी है।

वालपाखाडी के जनजीवन ने उपन्यास की प्रादेशिकता को ऊँचा बनाया है। गुण्डई, लफड़ेबाजी, झगड़े, मारपीट, छेड़छाड़ आदि का जिक्र यहाँ है। सू कहती है - 'वालपाखाडी के सब लोग नीचकर्मा हैं। लफड़ेबाजी के सिवा उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। हर एक दूसरे की दखल लेता है, दूसरा क्या खाता है, क्या पिता है इसकी दखल लेता है।'[13]

प्रस्तुत उपन्यास में एक पागल भी है जो लडकियों की छेड़छाड़ करने में अग्रणी है। आने-जानेवाली लडकियों को कच्ची इमली, पक्की इमली कहकर पुकारता है। इस उपन्यास में सू और बश्या के प्रेम-सम्बन्ध स्थापित होने पर बशा की पत्नी द्वारा सू को मारना, वालपाखाडी के

गुण्डे व्यक्ति मामा सुर्वे द्वारा गंदी बातें करना, मामा सुर्वे द्वारा आतंक जताना, वासुनाका के युवकों द्वारा गुण्डई करना, पिटाई करना आदि अनेक घटनाएँ इस बस्ती की विकृतियों को खोलकर हमारे सामने लाती है। इस बस्ती के भोगासक्त जनजीवन का चित्रण करते हुए डापन्या कहता है - 'मैं बायजी को चाहता हूँ, खुल्लम-खुल्ला बताता हूँ, सिर्फ एक रात बायजी मुझे मिले तो मेरे पचास रूपये वसूल।'[14]

यहाँ अंत में डापन्या बायजी से नाराज होकर सायन की वेश्या की तरफ जाता है, वहाँ भी अतृप्त रहकर बकुला के पास जाता है। यहाँ वासना की अतृप्ति देखने को मिलती है।

इन लोगों में अंधःविश्वास भी है। भानु को लगता है कि - पोक्या ने उसे झाड-फूँक से अशक्त बनाया है तब वह पोक्या से कहती है - 'कहते है बदलापुर में एक बुआ रहता है, उसके पास भस्म मिलता है। जिसे हम अपना बनाना चाहते है उसे भस्म लगाते ही वह आकर्षित होता है।'[15] मामा सुर्वे की पत्नी की अंबुठी फिसल जाने पर पोक्या कहता है - 'तुम जोगेश्वरी देवीपथ से मुर्गा उतारकर उसे बली चढा दो। अंबुठी जरूर मिलेगी।'[16]

प्रस्तुत उपन्यास में शराबपान, आपसी संघर्ष, अनैतिक सम्बन्ध, अवैध प्रेमसम्बन्ध, छेडछाड, नारी स्वच्छंदता आदि का दौर-दौरा लगा हुआ है। मामु को पागल बनानेवाली भानु, खोमन्या परसू को झुलानेवाली येप्पी, उच्छृंखलता पर बल देनेवाली सू, पति के मौत के पश्चात् दाजी से सम्बन्ध रखनेवाली बायजी, नूरबानू मेन्शन के काका नामक बुढे की युवा पत्नी रत्ना, किसी लोफर के साथ भाग जानेवाली बाबूवाणी की बायडी, बाबल से जुडी दादू की पत्नी पार्वती आदि अनेक बेईमान नारियाँ इस उपन्यास में भाऊ पाध्ये ने चित्रित की है। इस बकाल बस्ती में बसी इन दुर्दैवी नारियों की कथा 'वासुनाका' के द्वारा लेखक ने कुशलता के साथ चित्रित की है। इसमें अवैध प्रेम की अधिकता है। अश्लील शब्दों की भरमार है। बकाल बोली के शब्दों के प्रयोग यहाँ अधिक हैं। श्रीमती दुर्गा भागवत के मतानुसार - 'इस उपन्यास की मूल कल्पना युवावस्था में पदार्पित बिगडे हुए युवकों की अतृप्त लैंगिक वासना है।'[17]

विजय तेंडूलकर के मतानुसार - 'उच्च, उदात्त, सात्विक एवं सुसंस्कृत आदि में से एक भी उद्देश्य सामने न रखनेवाली 'वासुनाका' लोफरों की दुनिया है।'[18]

डॉ. आनंद यादव के मतानुसार - ' 'वासूनाका' में वालपाखाडी की संस्कृति को यदि विशुध्द करना हो तो इस विकृत लोफरों की कंपनी का अर्थ लगाना आवश्यक है।'[19]

डॉ. भालचंद्र फडके के मतानुसार - 'महानगरों के विकास के साथ बढनेवाली झोपडपट्टी में स्थित बकाल जिंदगी, वहाँ के लोगों की अतृप्त कामवासनाओं को वाणी देने का महत्वपूर्ण काम 'वासूनाका' में किया है।'[20]

लगता है कि लेखक ने यह विश्व अत्यंत नजदीक से देखा होगा और इस जीवन का अनुभव भी किया होगा। इस उपन्यास के द्वारा भाऊ पाध्ये ने उपेक्षित जीवन की नीरसता विशद करके मराठी उपन्यास क्षेत्र में ऊँचा स्थान प्राप्त किया है।

'माहीमची खाडी' - मधु मंगेश कर्णिक : 1969 :-

मधु मंगेश कर्णिक के 'माहीमची खाडी' 1969 में बांद्रा का कसाईखाना और माहीम की खलीज के बीच पट्टी में घोडबंदर रास्ते के आश्रय से बसी झोपडपट्टी का चित्रण मिलता है। यहाँ लेखक ने असहाय, पतीत और घिरे हुए समूह जीवन का चित्रण किया है।

प्रस्तुत झोपडपट्टी के परिवेश ने महानगरीय उपेक्षित भूभाग को प्रधानता प्राप्त कराके दी है। इस झोपडपट्टी के पास एक बडी पाईपलाईन है। सडा पानी, बौने पौधे, गंदा कीचड, इस गंदगी के बीच फँसे इन लोगों को आश्रय देने के लिए छोटे-छोटे झोपडे खडे हैं। इन झोपडों में दरिद्री लोग, दुष्ट लडके, सडियल कुत्तें, दुबले-पतले जानवर, सुअर और खुले मैदान पर प्रातःविधी के लिए बैठे हुए स्त्री-पुरूष आदि से युक्त एक उपेक्षित और नारकीय दुनिया को यहाँ साकार किया गया है। इस दुनिया का परिवेश निम्नरूप से द्रष्टव्य होता है -

'एक बाजू में एक मिनार के साथ मस्जिद को बगल में लेकर खडा हुआ वान्द्रे का कसाईखाना और दूसरी बाजू में माहीम की खलीज में नमकीले, सडे हुए कीचड में उगे बौने पेड-पौधों के बीच एक विस्तीर्ण पट्टी में घोडबन्दर रोड के आश्रय से बसी हुई वह झोपडपट्टी। खलीज का दुषित, काला, तैरता हुआ पानी, वही बसी हुई अनेक छोटी-छोटी झोपडियाँ, नजदीक बाजू में सफेद रंगों में जाहिरातें दिखानेवाली बडी पाईपलाईन। उसके भी पार खलीज पर रेल्वे का ब्रीज, उसपर से भाग-दौड करनेवाली लोकल ट्रेन, सडा हुआ पानी, बौने पेड-पौधें, गंदा कीचड इनके बीच आदमियों को सिर और पैर टिकाने आश्रय देनेवाली सौ-सौ छोटी-छोटी झोंपडियाँ। गोणपाट, सिनेमा के पोस्टर, पुराने पत्रे, फेंकी हुई चटईयाँ और तट्टे इन्हीं से खडी हुई, खलीज पर जोर के वायु से छप्पर उड न पाए, इसलिए सिर पर बडे-बडे पत्थर लेकर खडी हुई झोपडियाँ ---- इनमें से घुमनेवाले दरिद्री आदमी, दुष्ट बच्चें, सडियल कुत्ते, हड्डियों का ढाँचा ही रही हुई जानवरें

और आमने सामने खुले आम पेशाब, गंदगी करनेवाले पाईपलाईन के नजदीक की मर्द और औरतें भी। '21

इस उपेक्षित परिवेश का जनजीवन भी गंदगी से सन्न है। चार पीढियों से यहाँ रहनेवाला और इस खलीज पर अधिकार जतानेवाला सरजू कोली इस खलीज को हमेशा गालियाँ देता है। सरजू कहता है - 'अरे बात छोडो इमानदारी की। यह साली पूरी खलीज ही बेईमान है। यहाँ का हर एक आदमी बेईमान है ----- किस वजह से? मालूम है? नही ----- तो सुन ---- यहाँ का आदमी पानी पीता है वह चोरी का ---- पेट के लिए धन्धा करता है वह चोरी का ---- मकान में रहता है वह भी चोरी का ----- कुछ भी अपने हक्क का नहीं है यहाँ के आदमी का ---- फिर इमानदार खुन कैसा पैदा होगा? बोलो? ----- जैसा अन्न, पानी वैसा ही आदमी का खून ----।'22 सरजू के मतानुसार यहाँ का हर आदमी बेईमान है, यहाँ का हर आदमी जो पानी पीता है वह भी चोरी का है, उदरपूर्ति के लिए जो धन्दा करता है वह भी चोरी का, जिस झोपडी में वह रहता है वह भी चोरी की। यहाँ के सब व्यक्ति बेसहारा हैं। यहाँ उनका अपना कुछ नही है, इसलिए वे बेईमान बन गये हैं।

यहाँ दादूमियाँ और गंगा जैसे शरीफ आदमी हैं। बाकी सब हरामजादे, झूठे, लफंगे, चोर, बेईमान हैं। इन झोपडपट्टियों में सर्वत्र दयनीयता ही है। सरजू कहता है - 'तुझे बताता हूँ, दादूमियाँ। इस पूरी माहिम की खलीज में अकेला तू ही मुझे शरीफ आदमी दिखता है ---- एक तू और दूसरी वह गंगा ---- बाकी सब एकजात साले हरामजादे ---- छिनाल, चोर, लफंगे और दुष्ट। लगता है ------ यहाँ मन्दिर नहीं है, वही अच्छा है ----- साला भगवान भी भाग गया होता यहाँ के आदमियों से खीज कर ----- हाँ, तुझे बताता हूँ। यह झोपडपट्टी अब खडी हुई है ----- बीते पन्द्रह-बीस बरस में। उसके पहले यहाँ क्या था? यह खलीज, यह घोडबन्दर रास्ता और यह उस पार की रेल्वे लाईन ----- इस जिस्म के हर बाल की मुझे जानकारी है ---- यह काशीराम, भेनचोद अपनी अच्छी बीवी को छोडकर अपनी साली के साथ गोबर खाता है। यह लंगडा किसन ----- उसका बेटा वह भिक्या ----- साला आज नहीं तो कल जेल में पत्थर फोडने नही गया तो मैं कहता हूँ वह सब झूठ ---- साली औलाद ही हरामी ---- और उस पाईप पर के बच्चें ----- हॅट भानचोद ---- गाँव से बाहर निकाली हुई औलाद ---- दोपहर को झोपडपट्टी में आदमी न हो ऐसे घर में घुसकर उनके औरतों की इज्जत लुटने आगे-पिछे नहीं देखेंगे साले। '23

पत्नी पर हातभट्टी का बोझ रखकर दिनभर पडा रहनेवाला लंगडा किसन है। बिमार पत्नी को छोडकर अपनी साली के साथ भाग जानेवाला और बुढी माँ और छोटे बच्चे को

निराश्रित करके झोपडपट्टी को एक मद्रासी के हाथ बेचनेवाला काशीराम है। उसकी माँ कहती है - 'अरे हमारे दुष्मन। तुमने यह क्या किया? किसलिए हमें ऐसा बेसहारा किया। अब हम कहाँ जाए? हमें छोडकर तू उस राण्ड के साथ गया, उसकी चिता जलाने ---- अब हमें किसी का सहारा नहीं। झोपडी तूने किसके हुक्म से बेची? बोलो, हम कहाँ रहेंगे? यह अज्ञान बच्चा कहाँ सोएगा ---- कहाँ पढाई करेगा? बोलो ---- नहीं तो इस पत्थर पर सिर पटककर जान देगी और तुम्हें फाँसी पर लटकाएगी, मेरे दावेदार---।'[24]

गंगाबाई की लडकी को फँसाकर ले जानेवाला और उसे बेचकर मिले हुए पैसों पर ऐश करनेवाला श्यामू पेन्टर, युवावस्था में बुरी संगती में फँसकर, असाहय रोगों से ग्रस्त बना गंगाबाई का बेटा भिका आदि व्यक्तियों के जनजीवन से स्थित झोपडपट्टियों की दयनीयता और अनीति भी देखने को मिलती है। इस बस्ती में कई सच्चे दिल के व्यक्ति भी हैं जो इस बस्ती के बच्चों को स्कूलों की राह दिखाकर चले जाते हैं। सरजू व्हायोलीनवाले को कहता है - 'ये बच्चे देख --- पसंद आये तुम्हें? इन्हें स्कूल भेजने का - पढा है न किताबें? इन बच्चों को तू माहिम नहीं तो वद्रे के स्कूल ले जा और मास्टर को कहकर इनकी अक्वानी कर।'[25]

इन पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों में से झोपडपट्टी का जनजीवन आकार ग्रहण करता है। यह जनजीवन एक दफा पेट की भूख और वासना की भूख तृप्त करने का प्रयत्न करता है।

इस झोपडपट्टी में यौन सम्बन्ध देखने लायक हैं। इस यौन सम्बन्ध की ओर संकेत करती हुई सकीना रोशन को कहती है - 'इधर से जाते वक्त ऊपर मुंडी नहीं करना बेटी। बहुत बेशरम छोकरें है इधर के। माँ-बहन की इज्जत समझती नहीं उनको -।'[26] साटीन का सूथना फिसल जाने पर लज्जा से चूर-चूर हुई रोशन लज्जित होकर खाडी में छलाँग मारती है, परंतु थोडे ही दिनों में वहाँ की जिंदगी से परिचित होकर झोपडी के पीछे भिका से गले लगाकर ब्लाऊज के बटन ढीले करती है। यह यौन-सम्बन्ध देखकर सरजू रोशन को कहता है - 'बेशरम राण्ड। यह गोबर खाने के लिए पिछे रह गयी? चाचा-चाची बेचारे देवता के समान। ---- उसके घर का अनाज खाकर ये छिनालकी के धंधें करती है हरामजादी। तुम्हारी खाल निकालनी चाहिए ---- तुम्हें तो जिन्दा गाड देना चाहिए इस माहिम की खाडी में ----- हे भगवान---- कितनी यह कली कलंकित की है तुमने ------ इन नाखून जैसे छोटे बच्चों को क्या अक्ल दी है तूने----।'[27]

झोपडपट्टी में रहते हुए भी उज्वल एवं सुरक्षित जिंदगी के सपने देखनेवाले आशावादी पात्र भी यहाँ देखने को मिलते हैं। जया को स्नो-पावडर लगाने की ख्वाईश उसके मन में निर्माण

होती है। वह जिंदगीभर कीडें-मकोडें के समान इस झोपडपट्टी में मरना नहीं चाहती। सुखी जीवन और उज्वल आशावाद से वह श्यामू पेन्टर से भाग जाती है, परन्तु श्यामू पेन्टर की चालबाजी समझते ही वह दो ऊँची साडियाँ देनेवाले चन्दर के गले पडती है। अपनी सुख-सुविधा के लिए वह देह की दुकान शुरू करती है। उसके सारे सपने चूर-चूर हो जाते हैं। येशू का उज्ज्वल आशावाद भी यहाँ देखने लायक है। वह दारिद्रय से ग्रस्त होकर भी उज्ज्वल भविष्य के सपने देखती है।

झोपडपट्टी के परिवेश में विकृत स्वभाव के व्यक्ति भी देखने को मिलते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में पत्नी की बिमारी पर भूखा रहा काशीराम उसे लाथों से ठुकराता है। काशीराम की इस विकृती पर प्रकाश डालते हुए दादूमियाँ सरजू कोली से कहता हे - 'देख सरजू दादा। कैसा है ये इन्साफ? बेचारी जब तक जिन्दा थी, तब तक उसके दवा के लिए कभी एक आना भी नहीं काशीरामने खर्च किया। जबी मुदर गयी तब दस की नोट निकाली दारू के वास्ते---।'[28]

इस उपन्यास में काशीराम, श्यामू, पेन्टर और भिका आदि कई विकृत पात्र हैं, जिनकी विकृति परिवेशजन्य है।

'इस उपन्यास की भाषा बम्बईया बोली है। हिन्दी और उर्दू के शब्दों का बाहुल्य है। लेखकने कहीं-कही पर भाषिक कृत्रिमता को भी उजागर किया है। झोपडपट्टी के रूप में बसी नयी संस्कृति पर आधारित 'चक्र' के बाद का यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।'[29]

'प्रस्तुत उपन्यास में किसी विशिष्ट व्यक्ति की कथा नहीं है। यह इस खलीज की कथा है, जिसमें यहाँ का परिवेश ही नायक है और नायक बनकर यह परिवेश झोपडपट्टी के सुख-दुःख की कथा-व्यथा को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहा है। दादूमियाँ-सकीना और अब्बास के आगमन से कथावस्तु शुरू होती है और झोपडपट्टी गिराने आयी पुलिस की गडबडी में उपन्यास समाप्त होता है।'[30]

'तो आणि त्याचा मुलगा' - ल.ना. केरकर - 1980

'तो आणि त्याचा मुलगा' - 1980 में वरली के कोळीवाडे की झोपडपट्टी को केन्द्र बनाया गया है। लेखक मध्यवर्गीय होकर भी जगह की तंगी के कारण कोलीवाडे की झोपडपट्टी में आठ वर्षों तक रहता है। इस अवधि में अनुभूति और संवेदना के आधार पर उसने जो देखा और अनुभव किया इसका संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में अंकित किया गया है और असली जीवनानुभूति को इसमें निचोडा है।

झोपडपट्टियों का परिवेश गंदा होता है, चारों तरफ जगहों-जगहों पर लोग शौच-विधी करते हैं। लहलहाती धूप में सागर किनारें की हातभट्टियाँ नजर आती हैं। प्रस्तुत झोपडपट्टी का परिवेश भी इसके लिए अपवाद नहीं है। यहाँ शौच-विधी करनेवाले लोग हैं, हातभट्टियाँ हैं, हातभट्टी के काम में जूटे हुए स्त्री-पुरूष और अनजान बच्चे हैं।

लेखक ने इस झोपडपट्टी के जीवन के अनीति, मार-काट और उत्सव पर्व का भी चित्रण किया है। यहाँ का पशूतुल्य जीवन, वेश्या व्यवसाय करनेवाली नारियाँ, ऐसी अनारकी में जीनेवाले लोगों का जीवन-संघर्ष देखने को मिलता है। यहाँ दाम्या जैसे शराबी दादा, झगडैल और गालियाँ बकनेवाली औरतें, सामुदायिक पानी के नल पर के झगडे, गुण्डई करनेवाली टोलियाँ, गुण्डों के अत्याचारों की बली बनी नारायण येवलेकर की सुंदर युवा लडकी ख्रिश्चन अन्तोन और उसके पास दस वर्ष रही चंद्रा के अवैध सम्बन्ध। झोपडपट्टी के भोलेभाले लोगों के अज्ञान का फायदा उठानेवाले नागडेबुवा, इन लोगों के प्रतिवर्ष मनाने जानेवाले धार्मिक पर्व, सामूदायिक नाच-गान, वासनाओं के तुफान में डूबे हुए स्त्री-पुरूषों के अनैतिक सम्बन्ध आदि सभी घटनाओं का जिंदा चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। इस जिंदगी में लेखक के पंद्रह वर्षीय बेटे का अधःपतन देखने योग्य है। यहाँ अच्छे-बूरे सभी प्रकार के लोग हैं, इनमें ईर्षा और द्वेष भी है।

आज नारकीय झोपडपट्टियाँ भी सुधार की राह पर अग्रसर बनती जा रही हैं। सरकार द्वारा इन झोपडपट्टियों में आवश्यक सुविधाएँ पहुँचाने का प्रयत्न शुरू है। लेखक ने इस बस्ती के लोगों का विश्वास संपादन करके यहाँ बिजली और पानी की सुविधा उपलब्ध करा दी है। इस सुधार कार्य के कारण यहाँ लेखक को विरोध भी होता है। लेखक ने आज बम्बई में स्थित झोपडपट्टियों में होनेवाले परिवर्तन की ओर इशारा किया हुआ है।

'कोलीबाडे की इस झोपडपट्टी में शराबी हैं, जुआरी हैं, दादा हैं, गुण्डे हैं, जेब-कतरे हैं, चोर हैं, तस्कर हैं, काले बाजारवाले हैं अर्थात ये सम्पूर्ण जीवन गंदगी से और अराजक से परिपूर्ण है। लेखक ने इस पशूतुल्य जीवन का अनुभवजन्य शैली में वर्णन किया है। इस वर्णन में पात्रों की भाषा बम्बईय्या हिन्दी को अधिक प्रश्रय दिया है।'[3]

मराठी के झोपडपट्टी पर आधारित इन प्रमुख उपन्यासों के साथ-साथ झोपडपट्टी में स्थित वेश्या-व्यवसाय, स्त्री-पुरूष अवैध सम्बन्ध, उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनका प्रेम, अनीति, गुण्डई, हातापायी, खून-खराबा, लूट-पाट, नशा-पान, आपसी संघर्ष, दारिद्रय, बुरी आदतें, श्रध्दायुक्त नीतिमूल्य आदि का चित्रण आण्णाभाऊ साठे के 'चंदन' - 1962, प्र.ना. शेणई के 'वावर' - 1969, शंकरराव खरात के 'झोपडपट्टी' और 'हातभट्टी', भा.ल. पाटील के 'वस्ती वाढते

आहे' इन उपन्यासों में मिलता है। अनंत कदम के 'दिवसाच्या अंधारात' - 1980 एक अलग प्रकार का झोपडपट्टी जनजीवन पर प्रकाश डालनेवाला मराठी उपन्यास है। एक किशोर बालक को ममतामयी वात्सल्य देनेवाली मानवतावादी दृष्टि दिखायी है। उपन्यास में लेखक ने इस किशोर के पिता का नशापान चित्रित करके कल की चिंता से ग्रस्त किशोर उम्र के इस बच्चे की स्थिति और गति पर प्रकाश डाला है और झोपडपट्टी में स्थित मानवता, दारिद्रय, अनीति, नशा-पान आदि पर विचार किया गया है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध में मैंने हिन्दी उपन्यासों में चित्रित झोपडपट्टी जनजीवन के चित्रण को तलाशने का प्रयत्न किया है। हिन्दी में जगदम्बा प्रसाद दीक्षित के 'मुरदाघर' में विस्तार के साथ झोपडपट्टी जनजीवन का चित्रण हुआ है। वास्तव में झोपडपट्टी जन-जीवन पर औपन्यासिक रचनाओं का निर्माण सर्वप्रथम मराठी में शुरू हुआ। मराठी में यह एक स्वतंत्र औपन्यासिक धारा रही, जिसमें महानगरीय उच्छिष्ट पर पलनेवाले, महानगरीय गंदगी में कीडे-मकौडे की जिंदगी यापन करनेवाले लोगों की घृणित जिंदगी का चित्रण किया है। लगता है, जगदम्बाप्रसाद दीक्षितजी ने इसी के अनुकरन पर सन 1974 में 'मुरदाघर' का सृजन किया होगा। हिन्दी में इसी झोपडपट्टी साहित्य धारा के अनुकरण पर भीष्म साहनी के 'बसंती' में दिल्ली के झोपडपट्टी का चित्रण, शैलेश मटियानी के 'बोरीवली से बोरीबंदर तक', 'किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई', 'कबूतरखाना' आदि उपन्यासों में बम्बई महानगरी के झोपडपट्टी की नारकीय दुनिया को चित्रित किया है। झोपडपट्टी जनजीवन पर आधारित इन सभी उपन्यासों में मानवीय अनीति, गुण्डई, तस्करी, वेश्या-व्यवसाय, मार-काट, हाता-पायी, खून-खराबा, डकैती, दारिद्रय, अभावग्रस्तता में भी आतिथ्य, नशापान, गुण्डों के आतंक से भयग्रस्तता, अनैतिक यौन-सम्बन्ध, असाध्य रोग, बेगारी उज्ज्वल भविष्यत के सपने, मूल्यविहीनता, आपसी संघर्ष, गाली-गलौज, लोफरों की अधिकता, भोगासक्त जीवन, युवतियों की उच्छृंखलता आदि विकृत प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। इन बस्तियों में कई सच्चे दिल के इमानदार व्यक्ति भी रहते हैं। आज इन बस्तियों में सरकार द्वारा भौतिक सुविधाएँ भी पहुँचने लगी हैं। मराठी के उपन्यास लेखकों ने इस अछूते माहौल में पदार्पण करके वहाँ के मानवी जीवन के इन सभी पहलुओं पर चिंतन किया हुआ लक्षित होता है। साथ-ही-साथ इन लोगों का प्रबोधन भी करने का प्रयत्न किया है। सन 1960 के पश्चात झोपडपट्टी जनजीवन का यथार्थ चित्रण मराठी उपन्यासों में समर्थता के साथ हुआ है। इसी के अनुकरण पर हिन्दी में भी कहीं कहीं पर सन्दर्भ रूप में तो कहीं-कहीं पर स्वतंत्र रूप पर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। हमने यहाँ केवल इसी उद्देश्य से झोपडपट्टी जनजीवन पर आधारित कअी प्रमुख मराठी उपन्यासों का जिक्र प्रस्तुत किया है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. द.भि. कुलकर्णी, 'तिस-यांदा रणांगण', विजय प्रकाशन, नागपुर, प्र.सं. 1976,पृ.34
2. डॉ. सुधा काळदाते, 'आधुनिक भारताच्या सामाजिक समस्या', शारदा प्रकाशन, नांदेड, प्र.सं.1978, पृ.154-165
3. जयवंत दलवी, 'चक्र', मॅजेस्टिक बुक स्टॉल, बम्बई, प्र.सं. 1963, पृ. 7-8
4. वही, पृ. 100
5. वही, पृ. 73
6. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर, 'हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन', (1920-1947), कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्र.सं. 1969, पृ. 512
7. सं. नागनाथ कोत्तापल्ले, 'प्रतिष्ठान', कादम्बरी विशेषांक, फरवरी 1981, पृ. 69
8. नरहर कुरुंदकर, 'धार आणि काठ', देशमुख आणि कंपनी, पुणे, प्र.सं. 1971, पृ. 252-253
9. भाऊ पाध्ये, 'वासूनाका', भारतीय प्रकाशन मंदिर, बंबई, द्वि.सं. 1968, पृ. 11
10. वही, पृ. 12
11. वही, पृ. 50
12. वही, पृ. 34
13. वही, पृ. 33
14. वही, पृ. 74
15. वही, पृ. 17
16. वही, पृ. 59
17. सं.वसंत शिरवाडकर, 'वासूनाका-सांगोपांग', डिम्पल प्रकाशन, प्र.सं. 1983, पृ. 205
18. वही, पृ. 209
19. वही, पृ. 228
20. वही, पृ. 270
21. मधु मंगेश कर्णिक, 'माहिमची खाडी', प्र.मॅजेस्टिक बुक स्टॉल, मुंबई, तृतीय आवृत्ति, 1983, पृ. 4
22. वही, पृ. 115
23. वही, पृ. 58-59

24. मधु मंगेश कर्णिक, 'माहिमची खाडी', प्र.मॅजेस्टिक बुक स्टॉल, मुंबई, तृतीय आवृत्ति 1983, पृ. 112-113

25. वही, पृ. 82

26. वही, पृ. 28

27. वही, पृ. 106

28. डॉ. वाय.बी. धुमाळ, 'साठोत्तरी हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन - (1960-1980), पुणे विश्वविद्यालय की पीएच्.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध (अप्रकाशित) सन 1985, पृ. 503

29. वही, पृ. 503

30. वही, पृ. 505

000